Chapter चौबीस

भगवान् का मत्स्यावतार

इस अध्याय में भगवान् के मत्स्यावतार के वर्णन और महाराज सत्यव्रत के एक बाढ़ से बचने का उल्लेख हुआ है।

भगवान् स्वांश तथा विभिन्नांश द्वारा अपना विस्तार करते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भगवान् इस लोक में साधुओं या भक्तों की रक्षा करने और दुष्टों या अभक्तों का विनाश करने के लिए प्रकट होते हैं। वे विशेषतया गायों, ब्राह्मणों, देवताओं, भक्तों तथा वैदिक धर्म की रक्षा करने के लिए अवतरित होते हैं। इस प्रकार वे विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं—कभी मछली के रूप में, कभी शूकर के रूप में, तो कभी नृसिंहदेव या वामनदेव के रूप में। किन्तु किसी भी रूप या अवतार में वे प्रकृति के गुणों वाले वातावरण में आने पर भी कभी इनसे प्रभावित नहीं होते। यह उनकी परम नियामक शक्ति का द्योतक है। यद्यपि वे भौतिक वातावरण में आते हैं, किन्तु माया उन्हें छू तक नहीं पाती। अतएव उन पर कोई भी भौतिक गुण किसी भी मात्रा में लागू नहीं हो सकते।

एक बार पिछले कल्प के अन्त में हयग्रीव नामक एक असुर ने प्रलय के समय वैदिक ज्ञान को ब्रह्माजी से छीनना चाहा। अत: भगवान् ने स्वायंभुव मनु के काल के आरम्भ में मत्स्यावतार धारण करके वेदों की रक्षा की। चाक्षुष मनु के काल में सत्यव्रत नाम का एक राजा हुआ जो अत्यन्त धर्मात्मा शासक था। उसकी रक्षा हेतु भगवान् ने दूसरी बार मत्स्यावतार धारण किया । बाद में यही राजा सत्यव्रत सूर्यदेव का पुत्र बना और श्राद्धदेव कहलाया। भगवान् ने इन्हें मनु के रूप में स्थापित किया।

भगवान् की कृपा पाने के लिए राजा सत्यव्रत ने केवल जल पीकर जीवित रहने की तपस्या प्रारम्भ

की। एक बार कृतमाला नदी के तट पर तपस्या करते हुए जब वे अपनी अंजलि से जल दे रहे थे तो उन्हें एक छोटी सी मछली मिली। मछली ने राजा से अपनी रक्षा के लिए सुरक्षित स्थान में रखे जाने की विनती की। यद्यपि राजा को पता नहीं था कि मछली साक्षात् भगवान् है, किन्तु उसने राजा होने के नाते उसकी रक्षा की और उसे एक जलपात्र में सुरक्षित रख दिया। इस मछली ने भगवान् होने के कारण राजा को अपनी शक्ति दिखलानी चाही। अत: उसने अपने शरीर का इस तरह विस्तार किया कि वह जलपात्र में न रखी जा सकी। तब राजा ने इस मछली को एक बड़े कुएँ में डाल दिया, किन्तु कुँआ भी उसके लिए छोटा पड़ गया। तब राजा ने उसे एक झील में डाल दिया, किन्तु वह भी छोटी पड़ गई। अन्त में राजा ने इस मछली को समुद्र में डाल दिया, किन्तु समुद्र भी उसे अपने में समा न पाया। तब राजा समझ गया कि मछली भगवान् के अतिरिक्त और कोई नहीं है; अतएव उसने भगवान् से अपने मत्स्यावतार का वर्णन करने के लिए प्रार्थना की। भगवान् इस राजा पर प्रसन्न हो गये और उन्होंने राजा को बतलाया कि एक सप्ताह के भीतर सारे विश्व में बाढ़ आयेगी और यह मछली ऋषियों, वनस्पतियों, बीजों तथा अन्य जीवों समेत राजा की रक्षा अपने नथुने में बँधी नाव के द्वारा करेगी। यह कहकर भगवान् अदृश्य हो गये। राजा सत्यव्रत ने भगवान् को सादर प्रणाम किया और वे उनके ध्यान में लगे रहे। समय आने पर प्रलय आई और राजा ने एक नाव को निकट आते देखा। उसमें वह विद्वान ब्राह्मणों एवं ऋषियों समेत बैठ गया और भगवान् की पूजा करने के लिए उनकी स्तुति करने लगा। भगवान् सबों के हृदय में स्थित हैं। इस तरह उन्होंने महाराज सत्यव्रत तथा ऋषियों को अपने अन्त:स्थल से वैदिक ज्ञान की शिक्षा दी। अगले जन्म में सत्यव्रत ने वैवस्वत मनु के रूप में जन्म लिया जिसका वर्णन *भगवद्गीता* में हुआ है—*विवस्वान् मनवे प्राह*—सूर्यदेव ने *भगवद्गीता* का विज्ञान अपने पुत्र मनु को बतलाया। विवस्वान् का पुत्र होने के कारण यह मनु वैवस्वत मनु कहलाता है।

श्रीराजोवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मण: ।
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; भगवन्—हे शक्तिमान; श्रोतुम्—सुनने की; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; हरे:—भगवान् हरि के; अद्भुत-कर्मण:—जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं; अवतार-कथाम्—अवतार की लीलाएँ; आद्याम्—प्रथम; माया-मत्स्य-विडम्बनम्—जो मछली का अनुकरण मात्र है।

महाराज परीक्षित ने कहा : भगवान् हरि नित्य ही अपने दिव्य पद पर स्थित हैं; फिर भी वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और विभिन्न रूपों में अपने आपको प्रकट करते हैं। उनका पहला अवतार एक बड़ी मछली के रूप में हुआ। हे सर्व-शक्तिमान शुकदेव गोस्वामी! मैं आपसे उस मत्स्यावतार की लीलाएँ सुनने का इच्छुक हूँ।

तात्पर्य : भगवान् सर्वशक्तिमान हैं; फिर भी उन्होंने एक असाधारण मछली का रूप धारण किया। यह भगवान् के दस मूल अवतारों में से एक है।

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ।
तमःप्रकृतिदुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः ॥ २ ॥
एतन्नो भगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।
उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यत्-अर्थम्—किस हेतु; अदधात्—स्वीकार किया; रूपम्—रूप; मात्स्यम्—मछली का; लोक-जुगुप्सितम्—इस संसार में तुच्छ मानी जाने वाली; तमः—तमोगुणी; प्रकृति—आचरण; दुर्मर्षम्—जो अत्यन्त पीड़ा-दायक तथा गर्हित है; कर्म-ग्रस्तः—कर्म के नियमों के अधीन; इव—सदृश; ईश्वरः—भगवान्; एतत्—ये सारे तथ्य; नः—हमको; भगवन्—हे अत्यन्त शक्तिशाली साधु; सर्वम्—हर वस्तु; यथावत्—ठीक से; वक्तुम् अर्हसि—कृपा करके बतलायें; उत्तमश्लोक-चरितम्—भगवान् की लीलाएँ; सर्व-लोक-सुख-आवहम्—जिसको सुनने से सभी सुखी होते हैं।

किस कारण से भगवान् ने कर्म-नियम के अन्तर्गत विविध रूप धारण करने वाले सामान्य जीव की भाँति गर्हित मछली का रूप स्वीकार किया? मछली का रूप निश्चित रूप से गर्हित एवं घोर पीड़ा से पूर्ण होता है। हे प्रभु! इस अवतार का क्या उद्देश्य था? कृपा करके मुझे समझाइये क्योंकि भगवान् की लीलाओं का श्रवण हर एक के लिए मंगलकारी होता है।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से जो प्रश्न पूछा वह *भगवद्गीता* (४.७) में स्वयं भगवान् द्वारा बताये गये इस सिद्धान्त पर आधारित था—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"जब-जब और जहाँ जहाँ धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब हे भरत के वंशज! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।" भगवान् अपने हर अवतार में जगत को अधर्म से बचाने और विशेषकर अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए प्रकट होते हैं (*परित्राणाय साधूनाम्*)। उदाहारणार्थ,

वामनदेव अपने भक्त बलि महाराज को बचाने के लिए प्रकट हुए। इसी प्रकार जब भगवान् ने गर्हित मछली का रूप स्वीकार किया, तो अवश्य ही किसी भक्त पर कृपा करने के लिए ऐसा किया होगा। महाराज परीक्षित उस भक्त के विषय में जानने को उत्सुक थे जिसके लिए उन्होंने यह स्वरूप धारण किया था।

श्रीसूत उवाच
इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः ।
उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इति उक्तः—इस प्रकार पूछे जाने पर; विष्णु-रातेन—महाराज परीक्षित द्वारा, जो विष्णुरात कहलाते हैं; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; बादरायणिः—व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गास्वामी ने; उवाच—कहीं; चरितम्—लीलाएँ; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; मत्स्य-रूपेण—मछली के रूप में उनके द्वारा; यत्—जो भी; कृतम्—की गई।

सूत गोस्वामी ने कहा : जब परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से इस प्रकार जिज्ञासा प्रकट की तो उस महान् शक्तिशाली साधु पुरुष ने भगवान् के मत्स्यावतार की लीलाओं का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया।

श्रीशुक उवाच
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गो—गायों का; विप्र—ब्राह्मणों का; सुर—देवताओं का; साधूनाम्—तथा भक्तों का; छन्दसाम् अपि—यहाँ तक कि वैदिक वाङ्मय का भी; च—तथा; ईश्वरः—परम नियन्ता; रक्षाम्—रक्षा; इच्छन्—चाहते हुए; तनूः धत्ते—अवतारों के रूप धारण करते हैं; धर्मस्य—धर्म का; अर्थस्य—जीवन के उद्देश्य के नियमों का; च—तथा; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! गायों, ब्राह्मणों, देवताओं, भक्तों, वैदिक वाङ्मय, धार्मिक सिद्धान्तों तथा जीवन के उद्देश्य को पूरा करने वाले नियमों की रक्षा करने के लिए भगवान् अवतरित होते हैं।

तात्पर्य : भगवान् सामान्यतः गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए विभिन्न प्रकार के रूपों में अवतरित होते हैं। भगवान् को *गोब्राह्मणहिताय च* कहा गया है—अर्थात् वे गायों तथा ब्राह्मणों का उपकार करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। जब भगवान् कृष्ण अवतरित हुए तो वे जानबूझकर

ग्वालबाल बने और उन्होंने स्वयं यह दिखलाया कि किस तरह गायों तथा बछड़ों की रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार उन्होंने सुदामा विप्र को, जो असली ब्राह्मण थे, सम्मान प्रदान किया। भगवान् के निजी कार्यों से मानव समाज को चाहिए कि गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना सीखे। तभी धर्म, जीवन के उद्देश्य की पूर्ति तथा वैदिक ज्ञान की रक्षा की जा सकती है। गायों की सुरक्षा के बिना न तो ब्राह्मण संस्कृति को स्थिर रखा जा सकता है और न ही ब्राह्मण संस्कृति के बिना जीवन का उद्देश्य (अर्थ) पूरा किया जा सकता है। अतएव भगवान् को *गोब्राह्मणहिताय* कहा गया है क्योंकि उनका अवतार केवल गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा के लिए होता है। दुर्भाग्यवश, क्योंकि कलियुग में गायों की तथा ब्राह्मण-संस्कृति की रक्षा नहीं हो पाती, प्रत्येक वस्तु डांवाडोल स्थिति में है। यदि मानव समाज ऊपर उठना चाहता है, तो समाज के नायकों को *भगवद्गीता* के आदेशों का पालन करना चाहिए और गायों, ब्राह्मणों तथा ब्राह्मण संस्कृति को रक्षा प्रदान करनी चाहिए।

उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

उच्च-अवचेषु—उच्च या निम्न स्वरूपों वाले; भूतेषु—जीवों में; चरन्—आचरण करते हुए; वायुः इव—वायु की भाँति; ईश्वरः—परमेश्वर; न—नहीं; उच्च-अवचत्वम्—उच्च या निम्न कोटि के जीवन का गुण; भजते—स्वीकार करते हैं; निर्गुणत्वात्—समस्त भौतिक गुणों से ऊपर या दिव्य होने के कारण; धियः—सामान्यतया; गुणैः—प्रकृति के गुणों के द्वारा।

यद्यपि भगवान् कभी मनुष्य रूप में और कभी निम्न पशु के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु वे विभिन्न प्रकार के वायुमण्डल में से गुजरने वाली वायु की तरह प्रकृति से सदैव परे रहते हैं। प्रकृति के गुणों से परे रहने के कारण वे उच्च तथा निम्न रूपों से प्रभावित नहीं होते।

तात्पर्य : भगवान् भौतिक प्रकृति के स्वामी हैं (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। इसलिए प्रकृति के परम नियामक होने के कारण भगवान् उसके प्रभाव में नहीं आ सकते। यहाँ पर वायु का उदाहरण दिया गया है। यद्यपि वायु अनेक स्थानों से होकर बहती है, किन्तु वह इन स्थानों के गुणों से प्रभावित नहीं होती। यद्यपि वायु में कभी-कभी गंदे स्थान की गंध आ जाती है, किन्तु उसे उस स्थान से कुछ लेना-देना नहीं रहता। इसी प्रकार भगवान् सर्व-शुभ तथा सर्व-मंगलकारी होने के कारण कभी भी किसी साधारण जीव की भाँति भौतिक गुणों से प्रभावित नहीं होते। *पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्* (*भगवद्गीता* १३.२१)। जब जीव भौतिक प्रकृति में रहता है, तो वह उसके गुणों से

प्रभावित होता है। किन्तु भगवान् कभी भी प्रभावित नहीं होते। जो इसे नहीं जानता वह भगवान् का निरादर करता हुआ उन्हें सामान्य जीव मानता है (*अवजानन्ति मां मूढा:)। परं भावम् अजानन्त:*—ऐसे निष्कर्ष पर मूर्ख ही पहुँचते हैं क्योंकि वे भगवान् के दिव्य गुणों से अनजान रहते हैं।

आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लय: ।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७॥

शब्दार्थ

आसीत्—था; अतीत—भूतकाल में; कल्प-अन्ते—कल्प के अन्त में; ब्राह्म:—ब्रह्मा के एक दिन का; नैमित्तिक:—उसके कारण; लय:—प्लावन, बाढ़; समुद्र—समुद्र में; उपप्लुता:—जलमग्न हो गये; तत्र—वहाँ; लोका:—सारे लोक; भू:-आदय:—भू:, भुव: तथा स्व: ये तीनों लोक; नृप—हे राजा।.

हे राजा परीक्षित! विगत कल्प के अन्त में, ब्रह्मा का दिन समाप्त होने पर ब्रह्मा की निद्रा के कारण रात में प्रलय आ गई और तीनों लोक समुद्र के जल से प्लवित हो गये।

कालेनागतनिद्रस्य धातु: शिशयिषोर्बली ।
मुखतो नि:सृतान्वेदान्हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८॥

शब्दार्थ

कालेन—काल (ब्रह्मा के दिन के अन्त) के कारण; आगत-निद्रस्य—जब उन्हें नींद आने लगी; धातु:—ब्रह्मा का; शिशयिषो:—सोने के लिए लेटने की इच्छा करते हुए; बली—शक्तिशाली; मुखत:—मुख से; नि:सृतान्—निकलता हुआ; वेदान्—वैदिक ज्ञान को; हयग्रीव:—हयग्रीव नामक असुर ने; अन्तिके—पास ही; अहरत्—चुरा लिया।.

ब्रह्मा का दिन समाप्त होने पर जब ब्रह्मा को नींद आने लगी और वे लेटने की इच्छा करने लगे तब उस समय उनके मुख से वेद निकल रहे थे। तभी हयग्रीव नामक महान् राक्षस ने उस वैदिक ज्ञान को चुरा लिया।

ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वर: ॥ ९॥

शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जानकर; तत्—उस; दानव-इन्द्रस्य—महान् असुर; हयग्रीवस्य—हयग्रीव का; चेष्टितम्—कार्यकलाप; दधार—धारण किया; शफरी-रूपम्—मछली का रूप; भगवान्—भगवान्; हरि:—हरि ने; ईश्वर:—परम नियन्ता।.

यह जानकर कि यह कार्य महान् असुर हयग्रीव ने किया है, सर्व-ऐश्वर्यशाली भगवान् हरि ने मछली का रूप धारण किया और उस असुर को मारकर वेदों को बचाया।

तात्पर्य : चूँकि प्रत्येक वस्तु जल में निमग्न हो गई थी, वेदों को बचाने के लिए भगवान् के लिए

मछली का रूप धारण करना आवश्यक हो गया था।

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ।
नारायणपरोऽतपत्तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस प्रसंग में; राज-ऋषिः—राजा जो ऋषि के समान भी योग्य हो; कश्चित्—कोई; नाम्ना—नाम वाला; सत्यव्रतः—सत्यव्रत; महान्—महापुरुष; नारायण-परः—भगवान् नारायण का महान् भक्त; अतपत्—तपस्या की; तपः—तपस्या; सः—उसने; सलिल-आशनः—केवल जल पीकर।

चाक्षुष मन्वन्तर में सत्यव्रत नाम का एक महान् राजा हुआ जो भगवान् का बड़ा भक्त था। उसने केवल जल-पान को आधार बनाकर तपस्या की।

तात्पर्य : भगवान् ने वेदों को बचाने के लिए एक बार स्वायंभुव मन्वन्तर के शुरू में मछली का रूप धारण किया और दुबारा चाक्षुष मन्वन्तर में केवल सत्यव्रत नामक महान् राजा पर कृपा करने के लिए मछली का रूप धारण किया। जिस प्रकार वराह के दो अवतार हुए उसी प्रकार मछली के भी दो अवतार हुए थे। भगवान् ने एक मत्स्यावतार हयग्रीव को मारकर वेदों की रक्षा करने के लिए धारण किया और दूसरा मत्स्यावतार राजा सत्यव्रत पर कृपा करने के लिए।

योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ।
श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; असौ—वह (परम पुरुष); अस्मिन्—इसमें; महा-कल्पे—महा कल्प में; तनयः—पुत्र; सः—वह; विवस्वतः—सूर्यदेव का; श्राद्धदेवः—श्राद्धदेव के नाम से; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; मनुत्वे—मनु के पद पर; हरिणा—भगवान् द्वारा; अर्पितः—स्थित था।

इस (वर्तमान) कल्प में राजा सत्यव्रत बाद में सूर्यलोक के राजा विवस्वान का पुत्र बना और श्राद्धदेव के नाम से विख्यात हुआ। भगवान् की कृपा से उसे मनु का पद प्राप्त हुआ।

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ।
तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; कृतमालायाम्—कृतमाला नदी के तट पर; कुर्वतः—देते हुए; जल-तर्पणम्—जल का अर्घ्य; तस्य—उसकी; अञ्जलि—अंजुलि भर; उदके—जल में; काचित्—कोई; शफरी—छोटी मछली; एका—एक; अभ्यपद्यत—प्रकट हुई।

एक दिन जब राजा सत्यव्रत कृतमाला नदी के तट पर जल का तर्पण करके तपस्या कर रहा

था, तो उसकी अंजुली के जल में एक छोटी सी मछली प्रकट हुई।

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३॥

शब्दार्थ

सत्यव्रतः—राजा सत्यव्रत; अञ्जलि-गताम्—राजा की अंजुली के पानी में आई हुई; सह—साथ; तोयेन—जल के; भारत—हे राजा परीक्षित; उत्ससर्ज—फेंक दिया; नदी-तोये—नदी के जल में; शफरीम्—छोटी मछली को; द्रविड-ईश्वरः—द्रविड देश के राजा सत्यव्रत ने।

हे भरतवंशी राजा परीक्षित! द्रविडदेश के राजा सत्यव्रत ने अपनी अंजुली के जल के साथ उस मछली को नदी के जल में फेंक दिया।

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ।
यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ।
कथं विसृजसे राजन्भीतामस्मिन्सरिज्जले ॥ १४॥

शब्दार्थ

तम्—उससे (सत्यव्रत से); आह—कहा; सा—उस छोटी मछली ने; अति-करुणम्—अत्यन्त करुणामय; महा-कारुणिकम्—अत्यन्त कृपालु; नृपम्—राजा सत्यव्रत को; यादोभ्यः—जलचरों के द्वारा; ज्ञाति-घातिभ्यः—जो छोटी मछलियों को खाने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं; दीनाम्—बेचारी; माम्—मुझको; दीन-वत्सल—हे दीनों के रक्षक; कथम्—क्यों; विसृजसे—फेंक रहे हो; राजन्—हे राजा; भीताम्—अत्यन्त भयभीत; अस्मिन्—इस; सरित्-जले—नदी के जल में।

उस बेचारी छोटी मछली ने अत्यन्त कृपालु राजा सत्यव्रत से करुणापूर्ण स्वर में कहा : हे दीनों के रक्षक राजा! आप मुझे नदी के जल में क्यों फेंक रहे हैं जहाँ पर अन्य जलचर हैं, जो मुझे मार सकते हैं? मैं उनसे बहुत भयभीत हूँ।

तात्पर्य : *मत्स्यपुराण* में कहा गया है—

अनन्त शक्तिर्भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः ।

क्रीडार्थं याचयामास स्वयं सत्यव्रतं नृपम् ॥

''भगवान् में अनन्त शक्ति होती है। फिर भी उन्होंने अपने मत्स्यरूप की लीला में सत्यव्रत से रक्षा की भीख माँगी।''

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ।
अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५॥

शब्दार्थ

तम्—उस; आत्मनः—निजी; अनुग्रह-अर्थम्—अनुग्रह दिखाने के लिए; प्रीत्या—अत्यधिक प्रसन्न होकर; मत्स्य-वपुः-धरम्—मछली का शरीर धारण करने वाले भगवान् को; अजानन्—बिना जाने; रक्षण-अर्थाय—रक्षा करने के लिए; शफर्याः—मछली की; सः—उस राजा ने; मनः—मन में; दधे—निश्चय किया।

राजा सत्यव्रत ने यह न जानते हुए कि यह मछली भगवान् है अपनी प्रसन्नता के लिए सहर्ष उस मछली को संरक्षण प्रदान करने का निर्णय लिया।

तात्पर्य : यहाँ पर बिना जाने भगवान् की सेवा करने का दृष्टान्त प्रस्तुत है। ऐसी सेवा अज्ञात-सुकृति कहलाती है। राजा सत्यव्रत ने अपनी दया दिखानी चाही; उसे पता न था कि यह मछली भगवान् विष्णु है। ऐसी अज्ञात भक्ति से भगवान् की कृपा प्राप्त होती है। भगवान् की सेवा चाहे ज्ञात भाव से हो या अज्ञात से, कभी व्यर्थ नहीं जाती।

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ।
कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उस मछली के; दीन-तरम्—अत्यन्त कारुणिक; वाक्यम्—वचन को; आश्रुत्य—सुनकर; सः—वह; मही-पतिः—राजा; कलश-अप्सु—कलश में रखे जल में; निधाय—रखकर; एनाम्—इस मछली को; दयालुः—दयालु; निन्ये—ले आया; आश्रमम्—अपने घर।

उस मछली के कारुणिक शब्दों से प्रभावित होकर उस दयालु राजा ने उस मछली को एक जलपात्र में रख लिया और उसे अपने घर ले आया।

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ।
अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सा—वह मछली; तु—लेकिन; तत्र—वहाँ; एक-रात्रेण—एक ही रात में; वर्धमाना—बढ़कर; कमण्डलौ—जलपात्र में; अलब्ध्वा—न पाकर; आत्म-अवकाशम्—अपने शरीर के लिए सुविधाजनक स्थान; वा—अथवा; इदम्—यह; आह—कहा; मही-पतिम्—राजा से।

किन्तु मछली एक ही रात में इतनी बड़ी हो गई कि उसे उस जलपात्र में अपना शरीर इधर-उधर घुमाने में कठिनाई होने लगी। तब उसने राजा से इस प्रकार कहा।

नाहं कमण्डलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ।
कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; कमण्डलौ—जलपात्र में; अस्मिन्—इस; कृच्छ्रम्—बड़ी कठिनाई से; वस्तुम्—रहने के लिए; इह—यहाँ; उत्सहे—पसन्द करती हूँ; कल्पय—जरा सोचो; ओकः—रहने का स्थान; सु-विपुलम्—अधिक विस्तृत; यत्र—जहाँ; अहम्—मैं; निवसे—रह सकूँ; सुखम्—सुखपूर्वक।

"हे मेरे प्रिय राजा! मैं इस जलपात्र में इतनी कठिनाई से रहना पसन्द नहीं करती हूँ। अतएव कृपा करके इससे अच्छा जलाशय ढूँढें जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूँ।"

स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ।
तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सः—राजा ने; एनाम्—मछली को; ततः—तत्पश्चात; आदाय—निकाल कर; न्यधात्—डाल दिया; औदञ्चन-उदके—कुएँ के जल में; तत्र—वहाँ; क्षिप्ता—फेंकी जाकर; मुहूर्तेन—एक ही क्षण में; हस्त-त्रयम्—तीन हाथ; अवर्धत—तुरन्त बढ़ गई।

तत्पश्चात् राजा ने उस मछली को जलपात्र से निकाल कर एक विशाल कुएँ में डाल दिया। किन्तु वह मछली एक क्षण में ही बढ़कर तीन हाथ की हो गई।

न म एतदलं राजन्सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ।
पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाहं शरणं गता ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मे—मुझको; एतत्—यह; अलम्—उपयुक्त; राजन्—हे राजा; सुखम्—सुख से; वस्तुम्—रहने के लिए; उदञ्चनम्—जलाशय; पृथु—काफी बड़ा; देहि—दीजिये; पदम्—स्थान; मह्यम्—मुझको; यत्—जो; त्वा—तुम्हारी; अहम्—मैं; शरणम्—शरण में; गता—आई हुई।

तब मछली ने कहा : हे राजा! यह जलाशय मेरे सुखमय निवास के लिए उपयुक्त नहीं है। कृपया और अधिक विस्तृत जलाशय प्रदान करें क्योंकि मैं आपकी शरण में आई हूँ।

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन्सरोवरे ।
तदावृत्यात्मना सोऽयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—वहाँ से; आदाय—लाकर; सा—वह मछली; राज्ञा—राजा द्वारा; क्षिप्ता—डाली जाकर; राजन्—हे राजा परीक्षित; सरोवरे—झील में; तत्—उस; आवृत्य—ढ़ककर; आत्मना—शरीर से; सः—मछली; अयम्—यह; महा-मीनः—विशाल मछली; अन्ववर्धत—तुरन्त बढ़ गई।

हे महाराज परीक्षित! राजा ने उस मछली को कुएँ से निकाला और उसे एक झील में डाल दिया, किन्तु तब उस मछली ने जल के विस्तार से भी अधिक विशाल रूप धारण कर लिया।

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ।

निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; मे—मुझको; स्वस्तये—सुखी; राजन्—हे राजा; उदकम्—जल; सलिल-ओकसः—क्योंकि मैं विशाल जलचर हूँ; निधेहि—रख दें; रक्षा-योगेन—किसी उपाय से; ह्रदे—झील में; माम्—मुझको; अविदासिनि—शाश्वत।

तब मछली ने कहा : हे राजा! मैं विराट जलचर हूँ और यह जल मेरे लिए तनिक भी उपयुक्त नहीं है। अब कृपा करके मुझे बचाने का कोई उपाय ढूँढ निकालिए। अच्छा हो यदि आप मुझे ऐसी झील के जल में रखें जो कभी न घटे।

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ।
जलाशयेऽसम्मितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इति उक्तः—इस प्रकार प्रार्थना किया गया; सः—राजा; अनयत्—ले गया; मत्स्यम्—मछली को; तत्र—वहाँ; तत्र—जहाँ; अविदासिनि—जल कभी नहीं घटता; जल-आशये—जल के आगार में; असम्मितम्—असीम; तम्—उसको; समुद्रे—समुद्र में; प्राक्षिपत्—डाल दिया; झषम्—विशाल मछली को।

इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर राजा सत्यव्रत उस मछली को जल के सबसे बड़े आगार में ले आया। किन्तु जब वह भी अपर्याप्त सिद्ध हुआ तो राजा ने अन्त में उस मछली को समुद्र में डाल दिया।

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ।
अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

क्षिप्यमाणः—समुद्र में फेंके जाने पर; तम्—राजा से; आह—मछली ने कहा; इदम्—यह; इह—इस स्थान में; माम्—मुझको; मकर-आदयः—मगर जैसे घातक जलचर; अदन्ति—खा लेंगे; अति-बलाः—अत्यन्त बलशाली होने के कारण; वीर—हे वीर राजा; माम्—मुझको; न—नहीं; इह—इस जल में; उत्स्रष्टुम्—फेंकना; अर्हसि—तुम्हें चाहिए।

समुद्र में फेंके जाते समय मछली ने राजा सत्यव्रत से कहा : हे वीर! इस जल में अत्यन्त शक्तिशाली एवं घातक मगर हैं, जो मुझे खा जायेंगे। अतएव तुम मुझे इस स्थान में मत डालो।

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ।
तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विमोहितः—मोहग्रस्त; तेन—उस मछली के द्वारा; वदता—कहे जाने पर; वल्गु-भारतीम्—मधुर वचन; तम्—उससे; आह—कहा; कः—कौन; भवान्—आप; अस्मान्—हमको; मत्स्य-रूपेण—मछली के रूप में; मोहयन्—मोहित करने वाले।

मत्स्यरूप भगवान् से इन मधुर वचनों को सुनकर मोहित हुए राजा ने पूछा : आप कौन हैं? आप तो हम सबको मोहित कर रहे हैं।

नैवं वीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि वा ।
यो भवान्योजनशतमह्नाभिव्यानशे सरः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एवम्—इस प्रकार; वीर्यः—शक्तिशाली; जल-चरः—जलचर; दृष्टः—देखा गया; अस्माभिः—हमारे द्वारा; श्रुतः अपि—न ही सुना गया; वा—अथवा; यः—जो; भवान्—आप; योजन-शतम्—सैकड़ों मील तक; अह्ना—एक दिन में; अभिव्यानशे—बढ़कर; सरः—जल।

हे प्रभु! एक ही दिन में आपने अपना विस्तार सैकड़ों मील तक करके नदी तथा समुद्र के जल को आच्छादित कर लिया है। इससे पहले मैंने न तो ऐसा जलचर पशु देखा था और न ही सुना था।

नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; त्वम्—तुम हो; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; हरिः—भगवान्; नारायणः—भगवान्; अव्ययः—अव्यय; अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; भूतानाम्—सारे जीवों के लिए; धत्से—धारण किया है; रूपम्—रूप; जल-ओकसाम्—जलचर की तरह।

हे प्रभु! आप निश्चय ही अव्यय भगवान् नारायण श्री हरि हैं। आपने जीवों पर अपनी कृपा प्रदर्शित करने के लिए ही अब जलचर का स्वरूप धारण किया है।

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; ते—तुमको; पुरुष-श्रेष्ठ—हे जीवों में श्रेष्ठ, समस्त भोक्ताओं में श्रेष्ठ; स्थिति—पालन; उत्पत्ति—सृष्टि; अप्यय—तथा संहार के; ईश्वर—परमेश्वर; भक्तानाम्—अपने भक्तों के; नः—हम जैसे; प्रपन्नानाम्—शरणागतों के; मुख्यः—परम; हि—निस्सन्देह; आत्म-गतिः—परम गन्तव्य; विभो—भगवान् विष्णु।

हे प्रभु, हे सृष्टि, पालन तथा संहार के स्वामी! हे भोक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु! आप हम जैसे शरणागत भक्तों के नेता तथा गन्तव्य हैं। अतएव मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।

ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सर्वे—सारी; लीला—लीलाएँ; अवतारा:—अवतार; ते—आपके; भूतानाम्—जीवों के; भूति—फूलने-फलने (अभ्युदय) की स्थिति के लिए; हेतव:—कारण; ज्ञातुम्—जानने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; अद:—यह; रूपम्—रूप; यत्-अर्थम्—जिसलिए; भवता—आपके द्वारा; धृतम्—धारण किया गया।

आपकी सारी लीलाएँ तथा अवतार निश्चय ही समस्त जीवों के कल्याण के लिए होते हैं। अतएव हे प्रभु! मैं वह प्रयोजन जानना चाहता हूँ जिसके लिए आपने यह मत्स्यरूप धारण किया है।

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं
मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मन: ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सता-
मदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि न: ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; ते—आपके; अरविन्द-अक्ष—हे कमलनेत्रों वाले मेरे प्रभु; पद-उपसर्पणम्—चरणकमलों की पूजा; मृषा—व्यर्थ; भवेत्—हो सकती है; सर्व-सुहृत्—सबों के मित्र; प्रिय—सबों के प्यारे; आत्मन:—हर एक के परमात्मा; यथा—जिस प्रकार; इतरेषाम्—अन्यों (देवताओं) का; पृथक्-आत्मनाम्—आत्मा से भिन्न देहधारी जीव; सताम्—अध्यात्म में स्थित लोगों का; अदीदृश:—आपने दिखलाया है; यत्—जो; वपु:—शरीर; अद्भुतम्—अद्भुत; हि—निस्सन्देह; न:—हमको।

हे कमल की पंखुरियों के समान नेत्रों वाले प्रभु! देहात्मबुद्धि वाले देवताओं की पूजा सभी तरह से व्यर्थ है। चूँकि आप हर एक के परम मित्र तथा प्रियतम परमात्मा हैं अतएव आपके चरणकमलों की पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती। इसलिए आपने मछली का रूप दिखलाया है।

तात्पर्य : इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य जैसे देवता सामान्य जीव हैं, जो भगवान् के विभिन्नांश हैं। भगवान् जीवों के माध्यम से अपना विस्तार करते हैं (*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*)। उनके साकार विष्णुतत्त्व रूप सभी आध्यात्मिक हैं, स्वांश कहलाते हैं किन्तु सारे जीव जो उनसे पृथक् हैं उनके विभिन्नांश कहलाते हैं। कुछ विभिन्नांश रूप आध्यात्मिक होते हैं और कुछ पदार्थ तथा आत्मा के संमेल होते हैं। इस जगत में बद्धजीवात्माएँ भौतिक शक्ति से निर्मित अपने बाह्य शरीरों से भिन्न होती हैं। इस तरह स्वर्ग में रहने वाले देवता तथा अधोलोक में रहने वाले जीव समान प्रकृति वाले होते हैं। फिर भी इस लोक के मनुष्य कभी-कभी स्वर्गलोक के देवताओं की पूजा करने के लिए लालायित हो जाते हैं। ऐसी पूजा अस्थायी है। जिस प्रकार इस लोक के मनुष्यों को अपने शरीर बदलने होते हैं (तथा देहान्तरप्राप्ति:) उसी प्रकार से इन्द्र, चन्द्र, वरुण इत्यादि जीवात्माओं को भी यथासमय अपने-अपने

शरीर बदलने होंगे। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्*—अल्पबुद्धि वाले लोग देवताओं को पूजते हैं, किन्तु उनके फल सीमित तथा अस्थायी होते हैं। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्य देवता:*—जो लोग देवताओं के पद को नहीं जानते वे किसी भौतिक प्रयोजन से उनकी पूजा करने की ओर झुकते हैं, किन्तु ऐसी पूजा का फल कभी स्थायी नहीं होता। फलत: यहाँ पर कहा गया है—*यथेतरेषां पृथगात्मनां सताम्, पदोपसर्पणं मृषा भवेत्।* दूसरे शब्दों में, यदि किसी को किसी की पूजा करनी ही है, तो उसे भगवान् की पूजा करनी चाहिए। तब उसकी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जायेगी। *स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—भगवान् की पूजा करने का स्वल्प प्रयास भी स्थायी निधि होती है। अतएव जैसी कि *श्रीमद्भागवत* में संस्तुति की गई है—*त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे:।* मनुष्य को चाहिए कि वह हरि के चरणकमलों की पूजा करे, चाहे इसके लिए प्राप्त शरीर-विशेष के तथाकथित वृत्तिपरक धर्म को छोडना क्यों न पड़े। चूँकि शरीर की पूजा अस्थायी है इसलिए इसका फल स्थायी नहीं होता। किन्तु भगवान् की पूजा से बहुत बड़ा लाभ मिलता है।

श्रीशुक उवाच
इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पति:
सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ।
विहर्तुकाम: प्रलयार्णवेऽब्रवी-
च्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रिय: प्रियम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ब्रुवाणम्—बोलते हुए; नृपतिम्—राजा को; जगत्-पति:—सम्पूर्ण विश्व के स्वामी; सत्यव्रतम्—सत्यव्रत को; मत्स्य-वपु:—मत्स्य का शरीर धारण करने वाले भगवान् ने; युग-क्षये—युग के अन्त में; विहर्तु-काम:—अपनी लीलाओं का भोग करने के लिए; प्रलय-अर्णवे—बाढ़ के जल में; अब्रवीत्—कहा; चिकीर्षु:—करने का इच्छुक; एकान्त-जन-प्रिय:—भक्तों के परम प्रिय; प्रियम्—अत्यन्त लाभप्रद वस्तु।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब राजा सत्यव्रत ने इस तरह कहा तो अपने भक्त को लाभ पहुँचाने तथा बाढ़ के जल में अपनी लीलाओं का आनन्द उठाने के लिए युग के अन्त में मछली का रूप धारण करने वाले भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच
सप्तमे ह्यद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम ।

निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सप्तमे—सातवें; हि—निस्सन्देह; अद्यतनात्—आज से; ऊर्ध्वम्—आगे; अहनि—दिन में; एतत्—यह सृष्टि; अरिम्दम—हे शत्रुओं को दमन कर सकने वाले राजा; निमङ्क्ष्यति—जल में डूब जायेगी; अप्यय-अम्भोधौ—प्रलय के सागर में; त्रैलोक्यम्—तीनों लोक; भूः-भुव-आदिकम्—भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक।

भगवान् ने कहा : हे शत्रुओं को दमन कर सकने वाले राजा! आज से सातवें दिन भूः, भुवः, तथा स्वः ये तीनों लोक बाढ़ के जल में डूब जायेंगे।

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ।
उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों; लीयमानायाम्—जलमग्न हो जाने पर; संवर्त-अम्भसि—प्रलय के जल में; वै—निस्सन्देह; तदा—उस समय; उपस्थास्यति—प्रकट होगी; नौः—नाव; काचित्—एक; विशाला—बहुत बड़ी; त्वाम्—तुम्हारे पास; मया—मेरे द्वारा; ईरिता—भेजी गयी।

जब तीनों लोक जल में डूब जायेंगे तो मेरे द्वारा भेजी गई एक विशाल नाव तुम्हारे समक्ष प्रकट होगी।

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥
आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; तावत्—उस समय तक; ओषधीः—औषधियाँ; सर्वाः—सभी तरह की; बीजानि—बीज; उच्च-अवचानि—उच्च तथा निम्न; च—तथा; सप्त-ऋषिभिः—सात ऋषियों से; परिवृतः—घिरा हुआ; सर्व-सत्त्व—सभी प्रकार के जीव; उपबृंहितः—से घिरा; आरुह्य—चढ़कर; बृहतीम्—अत्यन्त बड़ी; नावम्—नाव में; विचरिष्यसि—विचरण करोगे; अविक्लवः—खिन्नतारहित; एक-अर्णवे—बाढ़ के सागर में; निरालोके—बिना प्रकाश के; ऋषीणाम्—ऋषियों के; एव—निस्सन्देह; वर्चसा—तेज से।

हे राजा! तत्पश्चात् तुम सभी तरह की औषधियाँ एवं बीज एकत्र करोगे और उन्हें उस विशाल नाव में लाद लोगे। तब सप्तर्षियों समेत एवं सभी प्रकार के जीवों से घिरकर तुम उस नाव में चढ़ोगे और बिना किसी खिन्नता के तुम अपने संगियों सहित बाढ़ के समुद्र में सुगमता से विचरण करोगे। उस समय ऋषियों का तेज ही एकमात्र प्रकाश होगा।

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ।

उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

दोधूयमानाम्—डगमगाती; ताम्—उस; नावम्—नाव को; समीरेण—हवा से; बलीयसा—शक्तिशाली; उपस्थितस्य—पास ही उपस्थित; मे—मेरे; शृङ्गे—सींग में; निबध्नीहि—बाँध देना; महा-अहिना—महान् सर्प (वासुकी) से।

तब ज्योंही नाव तेज हवा से डगमगाने लगे तुम उसे महान् सर्प वासुकि के द्वारा मेरे सींग से बाँध देना क्योंकि मैं तुम्हारे पास ही उपस्थित रहूँगा।

अहं त्वामृषिभिः सार्धं सहनावमुदन्वति ।
विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; त्वाम्—तुमको; ऋषिभिः—सारे ऋषियों के; सार्धम्—साथ; सह—से युक्त; नावम्—नाव; उदन्वति—प्रलय के जल में; विकर्षन्—खींचते हुए; विचरिष्यामि—विचरण करूँगा; यावत्—जब तक; ब्राह्मी—ब्रह्मा की; निशा—रात्रि; प्रभो—हे राजा।

हे राजा! नाव में बैठे तुम्हं तथा सारे ऋषियों को खींचते हुए, प्रलय-जल में मैं तब तक विचरण करूँगा जब तक ब्रह्मा की शयन-रात्रि समाप्त नहीं हो जाती।

तात्पर्य : यह विशेष प्रलय वास्तव में ब्रह्मा की रात्रि में नहीं अपितु उनके दिन के समय हुई थी क्योंकि यह घटना चाक्षुष मनु के काल में घटी थी। ब्रह्मा जब सोने चले जाते हैं तब उनकी रात होती है, किन्तु दिन के समय चौदह मनु रहते हैं जिनमें से एक चाक्षुष मनु है। इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर टीका करते हैं कि यद्यपि ब्रह्मा के लिए दिन था, किन्तु भगवान् की परम इच्छा से उन्हें कुछ समय के लिए नींद आने लगी। यह थोड़ा सा समय ब्रह्मा की रात्रि माना जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *लघु-भागवतामृत* में इसकी विस्तार से विवेचना की है, जिसका सारांश इस प्रकार है—अगस्त्य मुनि के शाप के कारण स्वायम्भुव मनु के काल में प्रलय हुई। इस प्रलय का वर्णन *मत्स्य पुराण* में पाया जाता है। भगवान् की इच्छानुसार चाक्षुष मनु के समय में अकस्मात् एक दूसरी प्रलय हुई। इसका वर्णन मार्कण्डेय ऋषि ने *विष्णु-धर्मोत्तर* में किया है। मनु के काल की समाप्ति पर प्रलय आवश्यक नहीं होती है, किन्तु चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में भगवान् ने अपनी माया से सत्यव्रत को प्रलय का प्रभाव दिखलाना चाहा। श्रील श्रीधर स्वामी भी इस मत से सहमत हैं।

लघु-भागवतामृत में कहा गया है—

मध्ये मन्वन्तरस्यैव मुनेः शापान् मनुं प्रति।

प्रलयोऽसौ बभूवेति पुराणे क्वचिदीर्यते॥

अयम् आकस्मिको जातश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।

प्रलयः पद्मनाभस्य लीलयेति च कुत्रचित्॥

सर्वमन्वन्तरस्यान्ते प्रलयो निश्चितं भवेत्।

विष्णुधर्मोत्तरे त्वेतत् मार्कण्डेयेण भाषितम्॥

मनोरन्ते लयो नास्ति मनवेऽदर्शि मायया।

विष्णुनेति ब्रुवाणैस्तु स्वामिभिर्नैष मन्यते॥

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।
वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे सम्प्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

मदीयम्—मेरी; महिमानम्—महिमा; च—तथा; परम् ब्रह्म—परम ब्रह्म, परम सत्य; इति—इस प्रकार; शब्दितम्—विख्यात; वेत्स्यसि—तुम समझोगे; अनुगृहीतम्—कृपा पाकर; मे—मेरे द्वारा; सम्प्रश्नैः—प्रश्नों के द्वारा; विवृतम्—पूर्णतया व्याख्या किया गया; हृदि—हृदय में।

मैं तुम्हें ठीक से सलाह दूँगा और तुम्हारा पक्ष भी लूँगा और मुझ परब्रह्म की महिमाओं के विषय में तुम्हारी जिज्ञासाओं के कारण हर बात तुम्हारे हृदय के भीतर प्रकट होगी। इस तरह तुम मेरे विषय में सब कुछ जान लोगे।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—परमात्मा सबों के हृदयों में स्थित हैं और उन्हीं से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति आती है। जो जितना शरणागत होता है उसी अनुपात में भगवान् अपने को प्रकट करते हैं। *ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।* आदान-प्रदान के सहयोग में भगवान् मनुष्य की शरणागति के अनुपात में अपने को प्रकट करते हैं। जो पूरी तरह शरण में आता है उसे आंशिक रूप से शरण में आने वाले की तुलना में भिन्न रूप में प्राकट्य किया जाता है। हर व्यक्ति स्वभावतः प्रत्यक्ष था अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् की शरण में जाता है। बद्धजीव संसार में प्रकृति के नियमों के प्रति भौतिक रूप से आत्म-समर्पण करता है, किन्तु जो व्यक्ति पूर्णरूपेण भगवान् की शरण में जाता है उस पर भौतिक प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे पूर्ण शरणागत व्यक्ति पर भगवान् प्रत्यक्षतः कृपा करते हैं। *मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।* जो पूर्णतया भगवान् की शरण में जाता है उसे प्रकृति के गुणों का भय

नहीं रह जाता क्योंकि हर वस्तु भगवान् की महिमा का विस्तार मात्र है (*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*) और ये महिमाएँ क्रमश: प्रकट होती हैं और अनुभव की जाती हैं। भगवान् परम शुद्धिकर्ता हैं (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। जो जितना ही पवित्र हो जाता है और ब्रह्म के बारे में जितना अधिक जानना चाहता है, भगवान् उसके समक्ष उतना ही अधिक प्रकट करते हैं। शुद्ध भक्तों को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् का पूर्ण ज्ञान प्रकट किया जाता है। भगवान् *भगवद्गीता* (१०.११) में कहते हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थम् अहं अज्ञानजं तम: ।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

''मैं उन पर कृपा करके उनके हृदयों में बस कर, ज्ञान के चमकते हुए दीप से अज्ञानजन्य अंधकार को विनष्ट कर देता हूँ।''

इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ।
सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—जैसाकि पहले कहा जा चुका है; आदिश्य—आदेश देकर; राजानम्—राजा (सत्यव्रत) को; हरि:—भगवान्; अन्तरधीयत—उस स्थान से अदृश्य हो गये; स:—वह (राजा); अन्ववैक्षत—प्रतीक्षा करने लगा; तम् कालम्—उस समय की; यम्—जो; हृषीक-ईश:—समस्त इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश ने; आदिशत्—आदेश दिया।

राजा को इस प्रकार आदेश देने के बाद भगवान् तुरन्त अन्तर्धान हो गये। तब राजा सत्यव्रत उस काल की प्रतीक्षा करने लगा, जिसका आदेश भगवान् दे गये थे।

आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षि: प्रागुदङ्मुख: ।
निषसाद हरे: पादौ चिन्तयन्मत्स्यरूपिण: ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

आस्तीर्य—फैलाकर; दर्भान्—कुशों; प्राक्-कूलान्—जिसके सिरे पूर्व की ओर थे; राज-ऋषि:—सन्तराजा सत्यव्रत; प्राक्-उदक्-मुख:—उत्तर पूर्व (ईशान्) की ओर मुख किये; निषसाद—बैठ गया; हरे:—भगवान् के; पादौ—चरणकमलों पर; चिन्तयन्—ध्यान करते हुए; मत्स्य-रूपिण:—जिसने मछली का रूप धारण किया था।

सन्त राजा ने कुशों के सिरों को पूर्व दिशा की ओर करके उन्हें बिछा दिया और स्वयं उत्तर पूर्व की ओर मुख करके कुशों पर बैठकर उन भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगा जिन्होंने मछली का रूप धारण किया था।

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम् ।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; समुद्रः—समुद्र; उद्वेलः—उमड़ता हुआ; सर्वतः—सर्वत्र; प्लावयन्—जलमग्न करते हुए; महीम्—पृथ्वी को; वर्धमानः—अधिकाधिक बढ़कर; महा-मेघैः—विशाल बादलों के द्वारा; वर्षद्भिः—लगातार वर्षा द्वारा; समदृश्यत—राजा ने देखा।

तत्पश्चात् विशाल बादलों ने झड़ी लगाकर समुद्र के जल को और अधिक चढ़ा दिया। इससे समुद्र बढ़कर स्थल के ऊपर बहने लगा और उसने समस्त विश्व को जलमग्न करना आरम्भ कर दिया।

ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ।
तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ध्यायन्—स्मरण करते हुए; भगवत्-आदेशम्—भगवान् के आदेश; ददृशे—उसने देखा; नावम्—नाव को; आगताम्—पास आती हुई; ताम्—उसमें; आरुरोह—चढ़ गया; विप्र-इन्द्रैः—साधु ब्राह्मणों सहित; आदाय—लेकर; औषधि—औषधियाँ; वीरुधः—तथा लताएँ।

ज्योंही सत्यव्रत को भगवान् का आदेश स्मरण आया त्योंही उसे अपनी ओर आती हुई एक नाव दिखी। तब उसने वनस्पतियों तथा लताओं को एकत्र किया और वह साधु ब्राह्मणों को साथ लेकर उस नाव में चढ़ गया।

तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ।
स वै नः सङ्कटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस राजा से; ऊचुः—कहा; मुनयः—सारे सन्त ब्राह्मणों ने; प्रीताः—प्रसन्न होकर; राजन्—हे राजा; ध्यायस्व—ध्यान करो; केशवम्—भगवान् केशव का; सः—वह; वै—निस्सन्देह; नः—हमको; सङ्कटात्—संकट से; अस्मात्—जैसा अब दिख रहा है; अविता—बचायेगा; शम्—कल्याण की; विधास्यति—योजना करेगा।

उन सन्त ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर राजा से कहा : हे राजा! भगवान् केशव का ध्यान कीजिए। वे हमें इस आसन्न संकट से उबार लेंगे और हमारे कल्याण की व्यवस्था करेंगे।

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ।
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

सः—भगवान्; अनुध्यातः—ध्यान किये जाने पर; ततः—तत्पश्चात् (सन्त ब्राह्मणों के वचन सुनकर); राज्ञा—राजा के द्वारा; प्रादुरासीत्—(उसके समक्ष) प्रकट हुई; महा-अर्णवे—प्रलय सागर में; एक-शृङ्ग-धरः—एक सींग धारण किये; मत्स्यः—बड़ी मछली; हैमः—सोने की बनी; नियुत-योजनः—अस्सी लाख मील लम्बी।

जब राजा भगवान् का निरन्तर ध्यान कर रहे थे तो प्रलय सागर में एक बड़ी सुनहरी मछली प्रकट हुई। इस मछली के एक सींग था और वह अस्सी लाख मील लम्बी थी।

निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

निबध्य—बांध कर; नावम्—नाव को; तत्-शृङ्गे—बड़ी मछली के सींग पर; यथा-उक्तः—जैसी सलाह दी गई थी; हरिणा—भगवान् द्वारा; पुरा—पहले; वरत्रेण—रस्सी के द्वारा; अहिना—विशाल सर्प (वासुकि) द्वारा; तुष्टः—प्रसन्न होकर; तुष्टाव—उसने प्रसन्न कर लिया; मधुसूदनम्—मधु के हन्ता भगवान् को।

जैसा कि भगवान् पहले आदेश दे चुके थे उसका पालन करते हुए राजा ने वासुकि सर्प को रस्सी बनाकर उस नाव को मछली के सींग में बाँध दिया। फिर सन्तुष्ट होकर भगवान् की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

श्रीराजोवाच

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद-
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयोपसृता यमाप्नुयु-
र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने निम्नवत् स्तुति की; अनादि—अनन्त काल से; अविद्या—अज्ञान से; उपहत—विनष्ट हो गया है; आत्म-संविदः—आत्म-ज्ञान; तत्—वह है; मूल—जड़; संसार—भौतिक बन्धन; परिश्रम—दुखद स्थिति तथा कठिन श्रम से पूर्ण; आतुराः—कष्ट सहने वाले; यदृच्छया—परम इच्छा से; उपसृताः—आचार्य का कृपापात्र; यम्—भगवान् को; आप्नुयुः—प्राप्त कर सकता है; विमुक्ति-दः—मुक्ति की प्रक्रिया; नः—हमारा; परमः—परम; गुरुः—गुरु; भवान्—आप।

राजा ने कहा : भगवान् की कृपा से उन लोगों को जो अनन्त काल से आत्मज्ञान खो बैठे हैं और इस अविद्या के कारण भौतिक कष्टमय बद्ध जीवन में रह रहें हैं भगवद्भक्तों से भेंट करने का अवसर मिलता है। मैं उन भगवान् को परम आध्यात्मिक गुरु स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य : वास्तव में भगवान् परम आध्यात्मिक गुरु हैं। वे बद्धजीवों के कष्ट के विषय में सब कुछ जानते हैं; अतएव वे इस भौतिक जगत में वास्तविक स्वयं प्रकट होते हैं, कभी अवतार के रूप में तो कभी किसी जीव को अपना प्रतिनिधि बनाकर। फिर भी वे सभी दशाओं में आदि आध्यात्मिक गुरु हैं,

जो इस संसार में कष्ट भोगने वाली बद्ध जीवात्माओं को प्रकाश प्रदान करता है। भगवान् सदैव बद्धजीवों की कई प्रकार की सहायता देने में लगे रहते हैं। इसीलिए उन्हें यहाँ पर *परमो गुरुर्भवान्* कहकर सम्बोधित किया गया है। भगवान् का प्रतिनिधि भी जो कृष्णभावनामृत का प्रसार-कार्य करता है भगवान् के आदेश को पूरा करने के लिए भगवान् द्वारा मार्गदर्शन पाता है। ऐसा व्यक्ति भले ही एक सामान्य मनुष्य लगे, किन्तु परम गुरु-रूप भगवान् की ओर से काम करने के कारण उसे सामान्य व्यक्ति की तरह उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। इसीलिए कहा गया है—*आचार्यं मां विजानीयात्*—आचार्य को जो भगवान् की ओर से कार्य करता है साक्षात् भगवान् जैसा मानना चाहिए।

साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रै-

रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।

किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य

वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

विश्वनाथ चक्रवती ठाकुर ने सलाह दी है कि गुरु जो भगवान् की ओर से कार्य करता है भगवान् की ही भाँति पूजा जाना चाहिए क्योंकि इस भौतिक संसार में फँसे बद्धजीवों को लाभ पहुँचाने के लिए भगवान् के सन्देश के प्रचार हेतु वह भगवान् का सर्वाधिक विश्वनीय दास होता है।

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः
सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं
ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

जनः—जन्म तथा मृत्यु के अधीन बद्धजीव; अबुधः—शरीर को आत्मा स्वीकार करने के कारण सर्वाधिक मूर्ख; अयम्—यह; निज-कर्म-बन्धनः—अपने पापपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के शरीरों को स्वीकार करते हुए; सुख-इच्छया—इस जगत में सुखी बनने की इच्छा से; कर्म—सकाम कर्म; समीहते—योजना बनाता है; असुखम्—केवल दुख के लिए; यत्-सेवया—जिसकी सेवा करने से; ताम्—कर्म बन्धन को; विधुनोति—स्वच्छ बनाता है; असत्-मतिम्—मलिन मनोवृत्ति (शरीर को आत्मा मानते हुए); ग्रन्थिम्—कठिन गाँठ; सः—भगवान्; भिन्द्यात्—काटी जाकर; हृदयम्—हृदय में; सः—वह (भगवान्); नः—हमारा; गुरुः—गुरु।

इस संसार में सुखी बनने की आकांक्षा से मूर्ख बद्धजीव सकाम कर्म करता है जिनसे केवल कष्ट ही मिलते हैं। किन्तु भगवान् की सेवा करने से मनुष्य सुख की ऐसी झूठी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। हे मेरे गुरु! मेरे हृदय से झूठी इच्छाओं की ग्रंथि को काट दें।

तात्पर्य : भौतिक सुख के लिए बद्धजीव सकाम कर्मों में संलग्न होता है, किन्तु वस्तुत: वे उसे भौतिक दुख में डाल देते हैं। बद्धजीव इसे न जानने के कारण अविद्या में रहता कहा जाता है। बद्धजीव सुख की झूठी आशा से विविध भौतिक योजनाओं को अपनाने में लग जाता है। यहाँ महाराज सत्यव्रत प्रार्थना कर रहे हैं कि भगवान् झूठे सुख की इस कठोर गाँठ को काट दें और उसके परम आध्यात्मिक गुरु बन जाँय।

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनं
पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो
भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यत्-सेवया—जिस (भगवान् की) सेवा से; अग्नेः—अग्नि के स्पर्श में; इव—मानो; रुद्र-रोदनम्—चाँदी या सोने का टुकड़ा पवित्र हो जाता है; पुमान्—पुरुष; विजह्यात्—त्याग सकता है; मलम्—संसार की सारी गंदी वस्तुओं को; आत्मनः—अपनी; तमः—तमोगुण, जिसके अन्तर्गत मनुष्य पवित्र तथा अपवित्र कर्म करता है; भजेत—असली रूप को प्राप्त करता है; वर्णम्—मूल पहचान; निजम्—अपनी; एषः—ऐसा; सः—वह; अव्ययः—अव्यय; भूयात्—हो; सः—वह; ईशः—भगवान्; परमः—परम; गुरोः गुरुः—गुरुओं के गुरु।

भवबन्धन से जो छूटना चाहता है उसे भगवान् की सेवा करनी चाहिए और पवित्र तथा अपवित्र कर्मों से युक्त तमोगुण का संसर्ग छोड़ देना चाहिए। इस तरह मनुष्य को अपनी मूल पहचान फिर से प्राप्त होती है, जिस प्रकार अग्नि में तपाने पर चाँदी या सोने का टुकड़ा अपना सारा मल छुड़ा कर शुद्ध हो जाता है। ऐसे अव्यय भगवान्! आप हमारे गुरु बनें क्योंकि आप अन्य सभी गुरुओं के आदि गुरु हैं।

तात्पर्य : मनुष्य जीवन अपने को शुद्ध बनाने के लिए तपस्या करने के निमित्त है। *तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येत।* प्रकृति के गुणों के कल्मष के कारण मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ा रहता है (*कारणं गुणसङ्गोऽस्य सद्असद्-योनिजन्मसु*); अतएव मनुष्य जीवन का उद्देश्य इस कल्मष से अपने को शुद्ध करना है, जिससे उसे अपना आध्यात्मिक स्वरूप पुन: प्राप्त हो सके और जन्म-मृत्यु के इस चक्र में उसे न पड़ना पड़े। कल्मषहीन बनने की संस्तुत विधि है भगवान् की भक्ति। आत्म-साक्षात्कार की अनेक विधियाँ हैं यथा *कर्म, ज्ञान* तथा *योग,* किन्तु इनमें से कोई भी भक्ति की विधि के तुल्य नहीं है। जिस प्रकार सोने तथा चाँदी के मल को मात्र जल से धोकर नहीं, अपितु अग्नि में

तपाकर दूर किया जा सकता है उसी प्रकार जीव को भक्ति के द्वारा उसके मूल स्वरूप में जागृत किया जा सकता है (*यत्सेवया*), *कर्म, ज्ञान* या *योग* से नहीं। चिन्तनपरक ज्ञान या योगासन प्रक्रिया से कोई लाभ नहीं हो सकता।

वर्णम् शब्द किसी के मूल स्वरूप की कान्ति को बताता है। चाँदी या सोने की मूल कान्ति चमकीली होती है। इसी प्रकार जीव की मूल कान्ति आनन्द की कान्ति है क्योंकि जीव *सच्चिदानन्द विग्रह* का अंशरूप है। *आनन्दमयोऽभ्यासात्।* सच्चिदानन्द विग्रह अर्थात् कृष्ण का अंश होने के कारण प्रत्येक जीव को आनन्दमय होने का अधिकार है। तो फिर प्रकृति के भौतिक गुणों द्वारा मलीन कल्मष के कारण जीव कष्ट क्यों उठाये? जीव को चाहिए कि शुद्ध हो और अपना मूल स्वरूप फिर से प्राप्त करे। ऐसा वह भक्ति द्वारा ही कर सकता है। इसलिए मनुष्य को भगवान् की शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिए जिन्हें यहाँ *गुरोर्गुरुः* अर्थात् गुरुओं का गुरु कहा गया है।

भले ही हमें भगवान् से प्रत्यक्ष सम्पर्क करने का सौभाग्य प्राप्त न हो, किन्तु भगवान् का प्रतिनिधि साक्षात् भगवान् जैसा होता है क्योंकि ऐसा प्रतिनिधि ऐसा कुछ भी नहीं कहता जो भगवान् द्वारा न कहा गया हो। इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने गुरु की यह परिभाषा दी है—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश*—प्रामाणिक गुरु वह है, जो अपने शिष्यों को कृष्ण द्वारा कहे गये सिद्धान्तों के अनुसार उपदेश देता है। प्रामाणिक गुरु वह है, जिसने कृष्ण को गुरु स्वीकार किया है। यह गुरु-परम्परा प्रणाली है। आदि गुरु तो व्यासदेव हैं क्योंकि वे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के वक्ता हैं जिनमें लिखी सारी बातें कृष्ण से सम्बन्ध रखती हैं। अतएव *गुरुपूजा* को व्यासपूजा कहा जाता है। अन्ततः आदि गुरु कृष्ण हैं, नारद उनके शिष्य हैं और व्यास नारद के शिष्य हैं। इस प्रकार क्रमशः गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। कोई व्यक्ति गुरु नहीं बन सकता यदि वह यह नहीं जानता कि कृष्ण या उनके अवतार क्या चाहते हैं। गुरु का सन्देश भगवान् का सन्देश है और वह संदेश है सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रसार।

न यत्प्रसादायुतभागलेश-
मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस-
स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्-प्रसाद—भगवान् की कृपा; अयुत-भाग-लेशम्—मात्र दस हजारवाँ भाग; अन्ये—अन्य; च—भी; देवाः—देवता तक; गुरवः—तथाकथित गुरु; जनाः—सारे लोग; स्वयम्—स्वयं; कर्तुम्—सम्पन्न करने के लिए; समेताः—कुल मिलाकर; प्रभवन्ति—समान रूप से समर्थ बन सकते हैं; पुंसः—भगवान् द्वारा; तम्—उसको; ईश्वरम्—ईश्वर को; त्वाम्—तुम्हारी; शरणम्—शरण; प्रपद्ये—ग्रहण करने दें।

न तो सारे देवता, न तथाकथित गुरू, न ही अन्य सारे लोग, स्वतंत्र रूप से या साथ मिलकर, आपकी कृपा के दस हजारवें भाग के बराबर भी कृपा प्रदान कर सकते हैं। अतएव मैं आपके चरणकमलों की शरण लेना चाहता हूँ।

तात्पर्य : कहा गया है कि—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—सामान्य लोग भौतिक इच्छाओं से प्रेरित होकर शीघ्र ही फल प्राप्त करने के लिए देवताओं की पूजा करते हैं। सामान्यत: लोग भगवान् विष्णु के भक्त नहीं बनते क्योंकि भगवान् विष्णु उनके आदेश-पूरक नहीं बनते। वे भक्त को कभी भी ऐसा वर नहीं देते जिससे भक्त के मन में और वरों की इच्छा उत्पन्न हो। देवताओं की पूजा करने से फल प्राप्त हो सकते हैं किन्तु जैसाकि *भगवद्गीता* में वर्णन हुआ है—*अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्*—देवताओं से जो भी वर लिये जा सकते हैं, वे क्षणिक होते हैं। चूँकि देवता स्वयं नश्वर होते हैं अतएव उनके वर भी नश्वर होते हैं और उनका कोई स्थायी महत्त्व नहीं होता। जो लोग ऐसे वरों की आकांक्षा करते हैं, वे अल्पज्ञ हैं (*तद्भवत्यल्पमेधसाम्*)। भगवान् विष्णु के वर भिन्न हैं। भगवान् विष्णु की कृपा होने पर मनुष्य भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त होकर भगवद्धाम को वापस जा सकता है। इसलिए देवताओं द्वारा दिये गये वर भगवान् के वरों के दस हजारवें भाग के भी बराबर नहीं होते। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह देवताओं या झूठे गुरुओं से वर प्राप्त करने का प्रयास न करे। उसे केवल भगवान् से वर पाने की कामना करनी चाहिए। जैसाकि भगवान् *भगवद्गीता* (१८.६६) में कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सारे धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों के फल से उबार लूँगा। तुम डरो मत।" यही सबसे बड़ा वर है।

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्

तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

अचक्षुः—जिसमें देखने की शक्ति न हो; अन्धस्य—अन्धे पुरुष का; यथा—जिस तरह; अग्रणीः—आगे चलने वाला नेता; कृतः—स्वीकृत; तथा—उसी प्रकार; जनस्य—ऐसे व्यक्ति का; अविदुषः—जिसे जीवन के लक्ष्य का कोई ज्ञान नहो; अबुधः—मूर्ख, मूढ़; गुरुः—गुरु; त्वम्—तुम; अर्क-दृक्—सूर्य के समान प्रतीत होते हो; सर्व-दृशाम्—ज्ञान के सारे स्रोतों में से; समीक्षणः—पूर्ण द्रष्टा; वृतः—स्वीकृत; गुरुः—गुरु; नः—हमारा; स्व-गतिम्—अपने असली जीवन-लक्ष्य को जानने वाला; बुभुत्सताम्—ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति को।

जिस प्रकार एक अन्धा पुरुष न देख सकने के कारण दूसरे अन्धे को अपना नायक मान लेता है, उसी तरह जो लोग जीवन-लक्ष्य को नहीं जानते वे किसी न किसी धूर्त तथा मूर्ख को अपना गुरु बना लेते हैं, किन्तु हमारा लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है अतएव हम आपको अपना गुरु स्वीकार करते हैं क्योंकि आप सभी दिशाओं में देखने में समर्थ हैं और सूर्य की तरह सर्वज्ञ हैं।

तात्पर्य : अज्ञान में डूबा रहने एवं जीवन-लक्ष्य न जानने के कारण बद्धजीव ऐसा गुरु बनाता है, जो शब्दों की जादूगरी जानता हो और ऐसा जादू दिखा सकता हो जो किसी मूर्ख के लिए आश्चर्यजनक हो। कभी-कभी मूर्ख व्यक्ति किसी को इसलिए गुरु बना लेता है क्योंकि वह अपनी योगशक्ति से थोड़ा सा सोना भी बना सकता है। चूँकि ऐसे शिष्य के पास अल्पज्ञान रहता है अतएव वह यह तै नहीं कर सकता कि सोना बनाना गुरु की कसौटी है या नहीं। क्यों न उन भगवान् कृष्ण को गुरु बनाया जाये जिनसे सोने की अनन्त खानें उत्पन्न होती हैं? *अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।* सोने की सारी खानें भगवान् की शक्ति द्वारा उत्पन्न की जाती हैं; अतएव उस जादूगर को क्यों गुरु बनाया जाये जो थोड़ा सा सोना ही बना सकता है? ऐसे गुरुओं को वे ही मानते हैं, जो अन्धे हैं और जीवन का लक्ष्य नहीं जानते। किन्तु महाराज सत्यव्रत जीवन का लक्ष्य जानते थे। वे भगवान् को जानते थे; अतएव उन्होंने भगवान् को अपना गुरु बनाया। या तो भगवान् या उनका प्रतिनिधि ही गुरु बन सकता है। भगवान् कहते हैं—*मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते*—ज्योंही कोई मेरी शरण में आ जाता है उसे माया के जाल से छुटकारा मिल सकता है। अतएव यह गुरु का कार्य है कि वह अपने शिष्य को उपदेश दे कि यदि वह भवबन्धन से छूटना चाहता है, तो भगवान् की शरण में जाये। यही गुरु का लक्षण है। इसी सिद्धान्त का उपदेश श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिया—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।* दूसरे शब्दों में, मनुष्य को यह सलाह दी जाती है कि वह किसी ऐसे को गुरु न बनाए जो भगवान्

कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेश के मार्ग पर न चलता हो।

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं गतिं
यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा
प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

जनः—व्यक्ति जो प्रामाणिक गुरु नहीं है (साधारण मनुष्य); जनस्य—उस साधारण व्यक्ति का जिसे जीवन का लक्ष्य ज्ञात नहीं है; आदिशते—आदेश देता है; असतीम्—नश्वर, भौतिक; गतिम्—जीवन लक्ष्य; यया—ऐसे ज्ञान से; प्रपद्येत—शरण में जाता है; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; तमः—अज्ञान; त्वम्—तुम; तु—लेकिन; अव्ययम्—जो विनष्ट न किया जा सके; ज्ञानम्—ज्ञान; अमोघम्—बिना भौतिक कल्मष के; अञ्जसा—तुरन्त; प्रपद्यते—प्राप्त करता है; येन—ऐसे ज्ञान से; जनः—व्यक्ति; निजम्—अपना; पदम्—मूल स्थान।

तथाकथित भौतिकतावादी गुरु अपने भौतिकतावादी शिष्यों को आर्थिक विकास एवं इन्द्रियतृप्ति के विषय में उपदेश देता है और ऐसे उपदेशों से मूर्ख शिष्य अज्ञान के भौतिक संसार में पड़े रहते है। किन्तु आप शाश्वत ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा ज्ञान प्राप्त करके तुरन्त ही अपनी मूल वैधानिक स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य : तथाकथित गुरू अपने शिष्यों को भौतिक लाभ के लिए शिक्षा देते हैं। कुछ गुरू उपदेश देते हैं कि ऐसा ध्यान किया जाये जिससे उसकी बुद्धि शरीर को इन्द्रियतृप्ति के योग्य बनाये रखने में बढ़े। दूसरे प्रकार के गुरू उपदेश देते हैं कि काम (यौन) ही जीवन का चरम लक्ष्य है; अतएव शक्तिभर सम्भोग करना चाहिए। ये उपदेश मूर्ख गुरुओं के हैं। दूसरे शब्दों में, मूर्ख गुरु के उपदेशों के कारण मनुष्य भौतिक संसार में हमेशा के लिए पड़ा रहता है और इसके कष्ट सहता रहता है। किन्तु यदि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति भगवान् से आदेश ग्रहण करता है, जैसाकि *भगवद्गीता* में या कपिलदेव के सांख्य दर्शन में बताया गया है, तो उसे शीघ्र ही मुक्ति मिल सकती है और वह आध्यात्मिक जीवन के मूल पद पर स्थित हो सकता है। *निजं पदम्* शब्द सार्थक हैं। भगवान् का अंश होने के कारण जीव को वैकुण्ठलोक में स्थान पाने का जन्मसिद्ध अधिकार है जहाँ किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। अतएव मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के आदेशों का पालन करे। तब *भगवद्गीता* के कथन के अनुसार इस शरीर को त्यागने के बाद मनुष्य भगवद्धाम वापस जायेगा—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।* भगवान् अपने मूल स्व-रूप में वैकुण्ठ में रहते हैं और भगवान् के आदेशों का पालन करने वाला भक्त

उनके पास चला जाता है (*माम् एति*)। आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में ऐसा भक्त भगवान् के पास लौट जाता है जहाँ वह उनके साथ खेलता तथा नाचता है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है।

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो
ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी-
र्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम, हे भगवान्; सर्व-लोकस्य—सारे लोकों एवं उनके निवासियों के; सुहृत्—शुभचिन्तक; प्रिय—अत्यन्त प्यारे; ईश्वरः—परम नियन्ता; हि—भी; आत्मा—परमात्मा; गुरुः—गुरु; ज्ञानम्—परम ज्ञान; अभीष्ट-सिद्धिः—समस्त इच्छाओं की पूर्ति; तथा अपि—फिर भी; लोकः—लोग; न—नहीं; भवन्तम्—आपको; अन्ध-धीः—अन्धी बुद्धि के कारण; जानाति—जान सकता है; सन्तम्—स्थित; हृदि—उसके हृदय में; बद्ध-कामः—भौतिक कामेच्छाओं से मोहित होने के कारण।

हे प्रभु! आप सबों के परम हितैषी तथा प्रियतम मित्र, नियन्ता, परमात्मा, परम उपदेशक, परम ज्ञान के दाता तथा समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाले हैं। यद्यपि आप हृदय में रहते हैं, किन्तु हृदय में बसी कामेच्छाओं के कारण मूर्ख व्यक्ति आपको समझ नहीं पाता।

तात्पर्य : यहाँ पर मूर्खता का कारण बताया गया है। चूँकि इस जगत में बद्धजीव भौतिकतावादी कामेच्छाओं से पूर्ण रहता है अतएव वह भगवान् को नहीं समझ पाता यद्यपि भगवान् सबों के हृदय में वास करते हैं (*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*)। इसी मूर्खता के कारण वह भगवान् से उपदेश नहीं ग्रहण कर पाता यद्यपि भगवान् प्रत्येक व्यक्ति को बाहर और भीतर से उपदेश देने के लिए उद्यत रहते हैं। भगवान् कहते हैं— *ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।* दूसरे शब्दों में, भगवान् भक्ति के विषय में उपदेश दे सकते हैं जिससे मनुष्य भगवद्धाम लौट सकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश लोग भक्ति को नहीं अपनाते। भगवान् सबों के हृदय में स्थित होकर मनुष्य को भगवद्धाम वापस जाने का पूरा-पूरा उपदेश दे सकते हैं, किन्तु मनुष्य कामेच्छाओं के कारण भौतिकतावादी कार्यों में लगा रहता है और भगवान् की सेवा नहीं करता। अतएव वह भगवान् के उपदेश के महत्त्व से वंचित रह जाता है। ज्ञान के बल पर मनुष्य यह समझ सकता है कि वह शरीर न होकर आत्मा है, किन्तु जब तक वह भक्ति में नहीं लगता तब तक जीवन का असली प्रयोजन पूरा पहीं हो पाता। जीवन का असली प्रयोजन भगवद्धाम वापस जाकर भगवान् के साथ रहना, उनके साथ खेलना नाचना तथा खाना-पीना है। ये सब आनन्द के विविध साधन हैं—आध्यात्मिक विविधताओं में आध्यात्मिक आनन्द। भले ही कोई ज्ञान के बल पर

ब्रह्मभूत पद को क्यों न पा ले तथा अपने आध्यात्मिक स्वरूप को क्यों न समझ ले, किन्तु भगवान् को समझे बिना वह आध्यात्मिक जीवन का आनन्द नहीं उठा सकता। इसका संकेत *अभीष्टसिद्धिः* शब्द से मिलता है। भगवान् की भक्ति में लगने से ही जीवन के चरम लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। तब भगवान् मनुष्य को सही उपदेश देंगे कि भगवद्धाम किस तरह वापस जाया जाये।

त्वं त्वामहं देववरं वरेण्यं
प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभि-
र्ग्रन्थीन्हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप कितने उच्च हैं; त्वाम्—तुमको; अहम्—मैं; देव-वरम्—देवताओं द्वारा पूजित; वरेण्यम्—सबों में महान्; प्रपद्ये—पूरी तरह शरणागत; ईशम्—परम नियन्ता को; प्रतिबोधनाय—जीवन के असली प्रयोजन को समझने के लिए; छिन्धि—काट दो; अर्थ-दीपैः—साभिप्राय उपदेश रूपी प्रकाश के द्वारा; भगवन्—हे भगवान्; वचोभिः—अपने शब्दों से; ग्रन्थीन्—गाँठों को; हृदय्यान्—हृदय के भीतर बँधी; विवृणु—बतलाइये; स्वम् ओकः—जीवन में मेरा गन्तव्य।

हे परमेश्वर! आत्म-साक्षात्कार के लिए मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप सभी वस्तुओं के परम नियन्ता के रूप में देवताओं द्वारा पूजित होते हैं। आप अपने उपदेशों से जीवन के प्रयोजन को प्रकट करते हुए कृपया मेरे हृदय की ग्रंथि को काट दीजिये और मुझे जीवन का लक्ष्य बतलाइये।

तात्पर्य : कभी-कभी यह तर्क किया जाता है कि लोग यह नहीं जानते कि गुरु कौन होता है और ऐसा गुरु ढूँढ़ पाना जो जीवनलक्ष्य के विषय में प्रकाश दे सके अत्यन्त कठिन है। इन सारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए राजा सत्यव्रत हमें रास्ता दिखलाते हैं कि भगवान् को असली गुरु के रूप में स्वीकार किया जाये। भगवान् ने *भगवद्गीता* में सारी बातें बतलाई हैं कि इस संसार में प्रत्येक वस्तु के साथ कैसे व्यवहार किया जाये और किस तरह भगवद्धाम वापस जाया जाये। अतएव तथाकथित गुरुओं से, जो मूढ़ तथा मूर्ख होते हैं, भ्रमित नहीं होना चाहिए। प्रत्युत मनुष्य को चाहिए कि भगवान् को साक्षात् गुरु के रूप में देखे। किन्तु बिना गुरु की सहायता के *भगवद्गीता* को समझ पाना कठिन है। अतएव गुरु परम्परा प्रणाली में प्रकट होता है। *भगवद्गीता* (४.३४) में भगवान् संस्तुति करते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

''गुरु के पास जाकर सत्य जानने का प्रयास करो। उससे विनीत भाव से प्रश्न पूछो और उसकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान दे सकता है क्योंकि उसने सत्य का दर्शन किया है।'' भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को प्रत्यक्ष उपदेश दिया। अतएव अर्जुन तत्त्वदर्शी या गुरु है। अर्जुन ने भगवान् को स्वीकार किया। *परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।* इसी तरह भगवान् के साकार भक्त श्री अर्जुन के चरणचिह्नों पर चलकर भगवान् कृष्ण की श्रेष्ठता स्वीकार करनी चाहिए जिसकी पुष्टि व्यास, देवल, असित, नारद तथा रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्क तथा विष्णुस्वामी इत्यादि परवर्ती आचार्यों एवं उनके भी बाद महानतम आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुई है। तो फिर गुरु ढूँढने में कठिनाई है कहाँ? यदि कोई निष्ठावान् है, तो वह गुरु पा सकता है और हर बात सीख सकता है। मनुष्य को चाहिए कि गुरु से शिक्षा ग्रहण करे और जीवनलक्ष्य की खोज करे। अतएव महाराज सत्यव्रत हमें महाजन का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। *महाजनो येन गतः स पन्थाः।* मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् (दशावतार) की शरण ग्रहण करे और उनसे आध्यात्मिक जगत एवं जीवनलक्ष्य के बारे में सीखे।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ।
मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तवन्तम्—महाराज सत्यव्रत के द्वारा कहे जाने पर; नृपतिम्—राजा को; भगवान्—भगवान्; आदि-पूरुषः—आदि पूरुष; मत्स्य-रूपी—मछली के रूप में; महा-अम्भोधौ—बाढ़ के जल में; विहरन्—विचरण करते; तत्त्वम् अब्रवीत्—परम सत्य के विषय में बतलाया।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब सत्यव्रत ने मत्स्य रूप धारण करने वाले भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना की तो उसको बाढ़ के जल में विचरण करते हुए भगवान् ने परम सत्य के विषय में उपदेश दिया।

पुराणसंहितां दिव्यां साङ्ख्ययोगक्रियावतीम् ।
सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५॥

शब्दार्थ

पुराण—पुराणों में, विशेष रूप से मत्स्य पुराण में, बतलाई गई विषय-वस्तु; संहिताम्—ब्रह्म-संहिता तथा अन्य संहिताओं में निहित वैदिक आदेश; दिव्याम्—सारा दिव्य वाङ्मय; साङ्ख्य—सांख्ययोग; योग—आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान या भक्तियोग; क्रियावतीम्—जीवन में व्यवहारिक रूप में प्रयुक्त; सत्यव्रतस्य—राजा सत्यव्रत के; राज-ऋषेः—राजर्षि; आत्म-गुह्यम्—आत्म-साक्षात्कार के सारे रहस्य; अशेषतः—सभी शाखाओं सहित।

इस प्रकार भगवान् ने राजा सत्यव्रत को वह आध्यात्मिक विज्ञान बतलाया जो सांख्ययोग कहलाता है, जिससे पदार्थ तथा आत्मा का अन्तर (अर्थात् भक्तियोग) जाना जाता है। इसके साथ ही भगवान् ने पुराणों (प्राचीन इतिहास) तथा संहिताओं में पाये जाने वाले उपदेश भी बतलाये। भगवान् ने इन सारे ग्रंथों में अपनी व्याख्या की है।

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ।
नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

अश्रौषीत्—उसने सुना; ऋषिभिः—ऋषियों के; साकम्—साथ; आत्म-तत्त्वम्—आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान; असंशयम्—बिना किसी सन्देह के (क्योंकि यह भगवान् द्वारा कहा गया था); नावि आसीनः—नाव में बैठा; भगवता—भगवान् द्वारा; प्रोक्तम्—बताया गया; ब्रह्म—सारा दिव्य साहित्य; सनातनम्—सदा विद्यमान।

राजा सत्यव्रत ने ऋषियों सहित नाव में बैठे-बैठे आत्म-साक्षात्कार के विषय में भगवान् के उपदेशों को सुना। ये सारे उपदेश शाश्वत वैदिक साहित्य (ब्रह्म) से थे। इस तरह राजा तथा ऋषियों को परम सत्य (परब्रह्म) के विषय में कोई संशय नहीं रहा।

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

अतीत—बीता हुआ; प्रलय-अपाये—बाढ़ के अन्त में; उत्थिताय—निद्रा के बाद होश में लाने के लिए; सः—भगवान् ने; वेधसे—ब्रह्मा को; हत्वा—मारकर; असुरम्—असुर; हयग्रीवम्—हयग्रीव को; वेदान्—सारे वैदिक अभिलेख; प्रत्याहरत्—लाकर दे दिए; हरिः—भगवान् ने।

(स्वायंभुव मनु के काल में) पिछली बाढ़ के अन्त में भगवान् ने हयग्रीव नामक असुर को मारा और ब्रह्मा के निद्रा से जगने पर उन्हें सारा वैदिक साहित्य प्रदान कर दिया।

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।
विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; तु—निस्सन्देह; सत्यव्रतः—सत्यव्रत; राजा—राजा; ज्ञान-विज्ञान-संयुतः—ज्ञान तथा उसके व्यावहारिक उपयोग से अभिज्ञ; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; प्रसादात्—कृपा से; कल्पे अस्मिन्—इस काल में (वैवस्वत मनु के राज्य में); आसीत्—हो गया; वैवस्वतः मनुः—वैवस्वत मनु।

भगवान् विष्णु की कृपा से राजा सत्यव्रत को सारा वैदिक ज्ञान प्राप्त हो गया और इस काल में उसने अब सूर्यदेव के पुत्र वैवस्वत मनु के रूप में जन्म लिया है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का निर्णय है कि सत्यव्रत चाक्षुष मन्वन्तर में प्रकट हुआ। चाक्षुष मन्वन्तर के बाद वैवस्वत मनु का काल प्रारम्भ हुआ। भगवान् विष्णु की कृपा से सत्यव्रत को द्वितीय मत्स्यावतार से उपदेश प्राप्त हुए और इस तरह उसे सारा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ।

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ।
संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

सत्यव्रतस्य—राजा सत्यव्रत का; राज-ऋषेः—महान् राजा; माया-मत्स्यस्य—तथा मत्स्यावतार का; शार्ङ्गिणः—सिर पर एक सींग वाला; संवादम्—वर्णन या व्यवहार; महत्-आख्यानम्—महान् कथा; श्रुत्वा—सुनकर; मुच्येत—उबर जाता है; किल्बिषात्—सारे पापों के फलों से।

महान् राजा सत्यव्रत तथा भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार से सम्बन्धित यह कथा एक महान् दिव्य आख्यान है। जो भी इसे सुनता है, वह पापमय जीवन के फलों से छूट जाता है।

अवतारं हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ।
सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

अवतारम्—अवतार; हरेः—भगवान् का; यः—जो भी; अयम्—यह; कीर्तयेत्—कहता है और कीर्तन करता है; अन्वहम्—रोज; नरः—ऐसा व्यक्ति; सङ्कल्पाः—सारी आकांक्षाएं; तस्य—उसकी; सिध्यन्ति—सफल होती हैं; सः—ऐसा व्यक्ति; याति—वापस जाता है; परमाम् गतिम्—भगवद्धाम या परम स्थान को।

जो कोई मत्स्य अवतार तथा राजा सत्यव्रत के इस वर्णन को सुनाता है उसकी सारी आकांक्षाएं पूरी होंगी और वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जाएगा।

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

प्रलय-पयसि—बाढ़ के जल में; धातुः—ब्रह्माजी से; सुप्त-शक्तेः—जो नींद के कारण निष्क्रिय था; मुखेभ्यः—मुँहों से; श्रुति-गणम्—वैदिक अभिलेख; अपनीतम्—चुराये गये; प्रत्युपादत्त—वापस दे दिया; हत्वा—मारकर; दितिजम्—महान् असुर को; अकथयत्—बतलाया; यः—जो; ब्रह्म—वैदिक ज्ञान; सत्यव्रतानाम्—सत्यव्रत तथा महर्षियों के प्रकाश हेतु; तम्—उसको; अहम्—मैं; अखिल-हेतुम्—समस्त कारणों के कारण को; जिह्म-मीनम्—बड़ी मछली का बहाना करके प्रकट होने वाले को; नतः अस्मि—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने उस विशाल मछली का रूप धारण

करने का बहाना किया जिसने ब्रह्मा के निद्रा से जगने पर उन्हें वैदिक साहित्य वापस लाकर दिया और राजा सत्यव्रत तथा महर्षियों को वैदिक साहित्य का सार कह समझाया।

तात्पर्य : यह भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार से सत्यव्रत की भेंट का सारांश है। भगवान् विष्णु का उद्देश्य हयग्रीव असुर से सारे वेद वापस लेकर ब्रह्माजी को सौंपना था। संयोगवश भगवान् ने अपनी अहैतुकी कृपा के कारण सत्यव्रत से बात की। *सत्यव्रतानाम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सूचित करता है कि जो लोग सत्यव्रत के स्तर पर हैं, वे भगवान् द्वारा प्रदत्त वेदों से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् जो भी बोलते हैं वह वेद मान लिया जाता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*वेदान्तकृद् वेदवित्*—भगवान् सारे वैदिक ज्ञान के संग्रहकर्ता हैं और वे वेदों के तात्पर्य को जानते हैं। अतएव जो कोई भगवान् कृष्ण से या *भगवद्गीता* यथारूप से ज्ञान ग्रहण करता है, वह वेदों के प्रयोजन को जानता है (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। कोई वेदवादरतों से अर्थात् जो वेद पढ़कर उनका दूसरा अर्थ लगाते हैं वैदिक ज्ञान नहीं समझ सकता। वेदों को तो भगवान् से जानना होता है।

भगवान् तथा आचार्यों की कृपा से यह टीका आज १ सितम्बर १९७६ को राधाष्टमी के दिन हमारे नई दिल्ली केन्द्र में समाप्त हुई। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*ताँदेर चरण सेवि भक्त-सने वास जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष।* मैं अपने गुरु श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के आदेश से *श्रीमद्भागवत* को अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ और उनकी कृपा से यह अनुवाद-कार्य क्रमशः प्रगति पर है। यूरोपीय तथा अमरीकी भक्त जो कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं मेरी पर्याप्त सहायता कर रहे हैं। इस प्रकार मैं अपने प्रयाण के पूर्व इस महान् कार्य को समाप्त करने के लिए आशान्वित हूँ। श्री गुरु तथा गौरांग की जय हो।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भगवान् का मत्स्यावतार'' नामक चौबीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।